कंचन

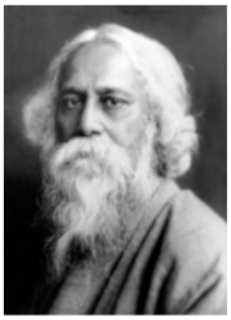

रविंद्रनाथ टैगोर

कंचन

मैं धन्यवाद करने ही जा रहा था, कि कंचन बोल उठी-

https://www.hindiadda.com/kanchan/

"दादू! हरेक को न्यौता देकर मुझे मुश्किल में डाल देते हो। भला इस जंगल में फिरंगी की दुकान कहां मिलेगी? ये विलायत के 'डिनर' खाने वाली जाती से सम्बन्धित इन्सान हैं। व्यर्थ में अपनी नातिन को बदनाम करना चाहते हो?"

"अच्छा, अच्छा तो कब आपको सुविधा होगी, बताइए- "वृध्द महाशय पूछ उठे।

"मेरी सुविधा तो कल ही हो सकती है; परन्तु मैं कंचनदेवी को परेशान नहीं करना चाहता। मुझे अनुसंधान के लिए वनों में जाना पड़ता है। वहां जो कुछ भी प्रकृति की देन के द्वारा मिलता है उसे बटोर कर ले आता हूं।"

"दादू! उनकी बातों पर विश्वास मत कीजिए...ये तो ऐसे ही कहते रहते हैं।"

मैंने सोचा यह तो अजीब लड़की है, जो कहता हूं उसी को जड़ से काट देती है। इस प्रकार वार्ता करते-करते हम सब कंचन के मकान की ओर बढ़े चले जा रहे थे कि कंचन हठात् बोल उठी- "अब आप अपने शिविर को लौट जाइये।"

"क्यों? मैंने तो सोचा था कि आप लोगों को मकान तक छोड़ आऊं।"

"बस, बस, हम खुद ही चले जायेंगे। अस्त-व्यस्त अवस्था में मकान को दिखाकर परिहास का केन्द्र नहीं बनना चाहती। उसे देखते ही मेम साहिब की याद आ जायेगी।"

विवश हो मुझे विलग होना पड़ा। उस अवस्था में मैंने कहा- "कल आप लोगों के यहां जो मेरा न्योता है, वह मेरे नए नामकरण के लिए है। कल से नवीन माधव नाम का डाक्टर सेन गुप्त अंश छूट जायेगा।"

"तब तो नामवर्त्तन कहिये, नामकरण क्यों कहते हैं?"

"जैसा आप समझें।"

इसके उपरान्त मैं अपने शिविर में लौट आया। उस दिन अनुसन्धान के लिए लाये हुए पदार्थों की मैं परख नहीं कर सका। मेरा मस्तिष्क कंचन के विषय में ही सोचता रहा।

अगले दिन तनिका के तट पर कंचन के साथ हमारी पिकनिक हुई। डॉक्टर साहब बालकों के समान मुझसे पूछ बैठे- "नवीन, क्या तुम विवाहित हो?" मैंने उस भावार्थ प्रश्न का तुरन्त ही उत्तर देते हुए कहा- "अभी तो अविवाहित हूं।" कंचन को किसी बात से छुटकारा नहीं? वह बोली- "दादू! अभी तक शब्द तो कन्यापक्ष वालों को सांत्वना देने मात्र के लिए है। उनका कोई यथार्थ अर्थ नहीं।"

"यथार्थ अर्थ नहीं, यह कैसे निश्चय कर लिया?"

"यह एक गणित की उलझन है, फिर भी उच्च गणित कहने से जो वस्तु समझी जाती है, वह यह नहीं है। यह तो पहले से ही सुनने में आया है कि आप छत्तीस साल के बच्चे हैं। इस अर्से में आपसे भी पांच-सात बार कहा जा चुका है कि बेटा बहू लाना चाहती हूं। लेकिन आपने कहा- इससे पहले मैं लोहे के सन्दूक में रुपये लाना चाहता हूं। इसके बाद इस अर्से में आपका सब कुछ हो गया केवल फांसी भर शेष थी। अन्त में प्रांतीय सरकार का बड़ा पद जुट गया तो मां ने फिर कहा- "अब तो बेटा ब्याह करना होगा। मेरी जिन्दगी के और कितने दिन बाकी हैं?' आपने कहा- 'मेरा जीवन और मेरा विज्ञान एक है, उसे मैं देश के लिए उत्सर्ग करूंगा। मैं अभी ब्याह न करूंगा।' विवश होकर फिर उन्होंने आंखों का पानी पोंछकर चुप्पी साध ली। आपके छत्तीस वर्ष का हिसाब लगाते समय मैंने कहीं गलती की हो तो कहिए, वास्तव में बताइये, संकोच की कोई आवश्यकता नहीं।"

फिर बोली- "हम लोगों के देश में आप लोग लड़कियों को जीवन-संगिनी के रूप में पाते हैं। विश्व का जिससे कोई प्रयोजन नहीं, किन्तु विदेश में जो लोग विज्ञान के तपस्वी हैं, उनको तो उपयुक्त तपस्विनी ही मिल जाती है- जैसे अध्यापक क्यूरी को सहधार्मिनी मादाम क्यूरी। तो क्या वैसी कोई आपको वहां रहते नहीं मिली?"

कंचन के कहते ही कैथेरिन की बात याद आ गई। लन्दन में रहते समय साथ ही काम किया था। यहां तक कि, मेरी एक रिसर्च की पुस्तक में मेरे नाम के साथ उसका नाम भी जड़ित था। बात माननी पड़ी।

कंचन ने तत्काल ही पूछा- "उनके साथ आपने विवाह क्यों नहीं किया? वे क्या इसके लिए तैयार नहीं थी?"

"उन्हीं की ओर से प्रस्ताव तो उठा था।"

"तब।"

"मेरा नाम भारतवर्ष का ठहरा, इसलिए...।"

"यानी स्नेह की सफलता आप जैसे साधकों की कामना की वस्तु नहीं। लड़कियों के जीवन का परम लक्ष्य व्यक्तिगत है, और आप जैसे इन्सानों का नैर्यक्तिक।"

इसका उत्तर मुझसे देते न बन पड़ा। मुझे चुप देखकर कंचन पुन: बोली- "बंगला साहित्य कतिपय आपने नहीं पढ़ा। उसमें यही बात दिखाई गई है कि लड़कियों का व्रत पुरुष को बांधना है और पुरुष का व्रत है उस बंधन को काटकर ऊपर लोक का मार्ग पकड़ना। कच भी देवयानी के अनुरोध की उपेक्षा कर निकल पड़ा था- आप मां का अनुनय न मानकर चल पड़े हैं। एक ही बात हुई। नारी और पुरुष में चिरकाल से चला आने वाला हो, चाहे भले ही अबला क्रन्दन होता रहे। उस क्रन्दन से आप लोग अपनी पूजा का नैवेद्य सजा लीजिए। देवता के उद्देश्य से ही नैवेद्य की भेंट होती है; लेकिन देवता निरासक्त ही रहते हैं।"

कंचन ने फिर कहा- "देवयानी ने कच को क्या श्राप दिया था, जानते हैं, नवीन बाबू?"

"नहीं।"

"अपने ज्ञान-साधन का फल आप स्वयं न सोच सकेंगे। हां, दूसरों को दान कर सकेंगे।" "मुझे यह बात कुछ अजीब-सी लगती है। यदि यह श्राप आज कोई विदेशी लोगों को देता, तो वह बच जाता। विश्व की सामग्री को अपनी सामग्री के समान व्यवहार करने की वजह से ही यूरोप वाले लालच के द्वार पर मरते हैं।"

उस दिन जो बातें हुई वे केवल हास्य-व्यंग्य ही नहीं थीं। उनमें युध्द की ओर संकेत था। कंचन के साथ अब मेरा सम्बन्ध सहज हो आया था, इस पर भी मैं कंचन के सम्मुख खड़े होकर उसकी चरम अभिलाषा की थाह पाने का कोई उपाय खोज नहीं पाया।

हां, अवश्य एक दिन पिकनिक के समय यह सुयोग मिल गया। उस समय डॉक्टर साहब शिवालय के खंडहर की सीढ़ी पर बैठकर रसायन-शास्त्र की कोई नई आई हुई पोथी पढ़ रहे थे। एक आबनूस के पेड़ की झाड़ी में बैठकर कंचन अचानक कह उठी-"इस महाकाल के वन में एक अंधी प्राण शक्ति है, उससे भयग्रस्त हूं।"

कंचन कहती गई- "पुराने भवनों के दरार से लुक-छिपकर पीपल का अंकुर निकलता है, और फिर धीरे-धीरे अपनी जड़ों से उसे बुरी तरह जकड़ लेता है। यह भी वैसा ही है। दादू के साथ यही बात हो रही थी। दादू कह रहे थे, बस्ती से बहुत दिनों तक दूर रहने से प्रकृति के अभाव से मानव का चरित्र दुर्बल हो जाता है और आदमी प्राणी प्रकृति का असर प्रखर हो उठता है।"

मैंने उत्तर दिया- "बताता हूं। मेरी बात को भली-भांति सोच देखियेगा। मेरा विचार यह है कि ऐसे अवसरों पर मानव का संग भीतर और बाहर से मिलना चाहिए, जिसका प्रभाव मानव प्रकृति को पूर्ण कर सके। जब तक यह नहीं होगा तब तक अंध शक्ति से पराजित ही होना पड़ेगा। काश आप मामूली..."

"हां, हां कहिये, संकोच मत कीजिये।"-कंचन ने शीघ्रता से कहा।

"यह तो जानते ही हैं कि मैं वैज्ञानिक हूं अत: जो कहने जा रहा हूं उसे व्यक्तिगत आसक्ति से रहित होकर ही कहूंगा। आपने एक दिन भवतोष को बहुत स्नेह से देखा था, क्या आज भी उसे उसी प्रकार..."

"समझ लीजिए, नहीं करती...तब।"

"मैंने ही आपके मन को उधर से हटाया है।"

"सम्भव हो सकता है; लेकिन आपने ही नहीं, बल्कि इस अंध शक्ति ने भी। इसलिए मैं इस हटने को श्रध्दा की दृष्टि से नहीं देखती।"

"ऐसा क्यों?"

"दीर्घ काल के प्रयास से मानवचित्र शक्ति में अपने आदर्श की रचना करता है, प्राण शक्ति की अंधता उस आदर्श को तोड़ देती है। आपके प्रति जो मेरा प्रेम है, वह उसी अंध शक्ति के आक्रमण का फल है।"

"नारी होकर भी आप प्रेम पर ऐसा अपवाद मढ़ती हैं?"

"नारी होने के कारण ही ऐसा कह रही हूं। प्रेम का आदर्श हमारे लिए पूजा की सामग्री है। उसी को सतीत्व कहते हैं। सतीत्व एक आदर्श है। यह सामग्री वन की प्रकृति की नहीं है, मानवी की है। इस निर्जन में इतने दिनों से इसी आदर्श की पूजा कर रही थी। सारे आघातों को सहन और धोखा खाने के बाद भी उसे बचा सकी, तो मेरी पवित्रता भी नहीं जायेगी।

"क्या भवतोष के लिए अब भी श्रध्दा का स्थान है?"

"नहीं।"

"उसके पास जाना चाहती हो।"

"नहीं।"

"तो फिर।"

"कुछ भी नहीं।"

"मैं आशय नहीं समझा।"

"आप समझ भी नहीं सकेंगे। आपकी संपत्ति ज्ञान है, उच्चतर शिखर पर वह भी इम्पर्सनल है। नारी संपत्ति हृदय की संपत्ति है। यदि उसका सब कुछ चला जाये, वह सब कुछ जो बाहरी है, जिसे स्पर्श किया जा सकता है तब भी उस प्रेम में वह वस्तु बच रहती है, जो कि इम्पर्सनल है।"

"वाद-विवाद में समय नष्ट न कीजिए। मुझे कुछ ही दिनों में खोज करने के अभिप्राय से अन्यत्र कहीं चला जाना होगा किन्तु...।"

"फिर गये क्यों नहीं?"

'आपसे...।"

तभी कंचन ने पुकारा**- "दादू!"**

डॉक्टर साहब अपना पढ़ना-लिखना छोड़कर उठ आये और मधुर स्नेह के स्वर में बोले- "क्या है दीदी?"

"आपने उस दिन कहा था न कि मनुष्य का सत्य उसी की तपस्या के भीतर से अभिव्यक्त हुआ है। उसकी अभिव्यक्ति प्राणी शास्त्र से समझी जाने वाली अभिव्यक्ति नहीं है?"

"हां बिल्कुल ठीक...।"

"दादू तो फिर आज अपनी और आपकी बात का निर्णय कर दूं। कई दिनों से मस्तिष्क उथल-पुथल का केन्द्र बना हुआ है।"

मैं उठ खड़ा हुआ, बोला- "तो मैं चलूं।"

"नहीं! आप बैठिये। दादू, आपका वही पद फिर खाली हुआ है और सेक्रटरी ने पुन: आपको बुलवाया भी है।"

"हां तो फिर...।"

"आपको उस पद को स्वीकार करना होगा...अति शीघ्र वहीं लौट जाना होगा।"

डॉक्टर साहब बेचारे हत्बुध्दि होकर कंचन के मुंह की ओर ताकते रहे। कंचन बोली-"अच्छा, अब समझी, आप इसी सोच में पड़े हैं कि मेरी क्या गति होगी? यदि

अहंकार की मात्रा बहुत न बढ़ती हो, तो आपको यह बात स्वीकार करनी ही होगी कि मेरे बिना आपका एक दिन भी नहीं चल सकता। मेरी अनुपस्थिति में तो पंद्रहवीं आश्विन को आप पंद्रहवीं अक्टूबर समझ बैठते हो। जिस दिन घर में अपने सहयोगी अध्यापक को भोजन के लिए आमंत्रित करते हो, उसी दिन लायब्रेरी का द्वार बन्द करके कोई 'निदारूण ईक्वेशन' सुलझाने में लग जाते हो। नवीन बाबू सोचते होंगे कि मैं बात बढ़ा-चढ़ाकर कह रही हूं।"

"आज ऐसी अशुभ बातें...।"

"सब अभी खत्म हो जायेंगी। आप चलें तो मेरे साथ अपने काम पर, छुटी हुई गाड़ी फिर लौट आयेगी।"

डॉक्टर साहब मेरी ओर देखकर बोले-"तुम्हारी क्या सलाह है नवीन?"

मैं क्षण भर स्तब्ध रहकर बोला-"कंचनदेवी से अधिक अच्छा परामर्श कोई नहीं दे सकता।"

कंचन ने उठकर मेरे चरण छूकर प्रणाम किया। मैं संकुचित होकर पीछे हट आया। कंचन बोली- "संकोच न कीजिये। आपकी तुलना में मैं कुछ भी नहीं हूं... यह बात किसी दिन साफ हो जायेगी? आज आपसे यहीं अन्तिम विदा लेती हूं, जाने से पूर्व अब भेंट न होगी।"

"यह कैसी बात कह रही हो, दीदी?"-डॉक्टर साहब ने पूछा।

"दादू..." इतना ही कह सकी कंचन।

मैंने उसी क्षण डॉक्टर साहब की पग-धूलि का स्पर्श किया। उन्होंने छाती से लगाकर कहा- "मैं जानता हूं नवीन कि तुम्हारी कीर्ति का पथ तुम्हारे सामने प्रशस्त है।"

अपने स्थान पर लौटकर पहला रिकार्ड निकाला। उसे देखते ही मन में सहसा आनन्द उमड़ आया। समझा मुक्ति इसी को कहते हैं। संध्या-बेला में दिन भर का काम समाप्त करके बरामदे में आते ही अनुभव हुआ... पंछी पिंजरे से तो निकल आया है, किन्तु उसके पांवों में जंजीर की एक कड़ी अब भी उलझी हुई है... हिलते-हिलते वह बज उठती है।

https://www.hindiadda.com/kanchan/